ईश्वर और मानव

★ डॉ० कृष्ण दिवाकर, एम० ए०, पी-एच० डी०
[प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना-७]

प्रातःकाल का समय था। एक महान योगी के आगमन से सम्पूर्ण गाँव उल्लसित था। गाँव के बाहर शिवजी के मन्दिर के प्रांगण के अधिकांश स्त्री, पुरुष बड़ी संख्या में उपस्थित थे। थोड़ी ही देर में स्वामीजी वहाँ पधारे। स्वामीजी का वह तेजःपुंज मुख, काषाय वस्त्रों से विभूषित गठा हुआ शरीर, उनके नेत्रों में झलकने वाली दिव्य ज्योति, हास्यवदन से विकीर्ण सन्तोष आदि से समस्त जनता मन्त्रमुग्ध हो गई। सभी ने स्वामीजी को सश्रद्धा प्रणाम किया और उत्तर में स्वामीजी ने भी अपना दाहिना हाथ उठाकर कृपाछत्र का संकेत दिया। ईश्वर को अभिवादन कर स्वामीजी ने अपनी अमृतवाणी का प्रकाशन प्रारम्भ किया। सभी श्रोतागण अत्यन्त विमुग्ध एवं शान्त थे। स्वामीजी ने कहा—"मनुष्य जन्म कई प्रकार के पुण्यों के फलस्वरूप हमें प्राप्त हुआ है। हमें चाहिए कि सांसारिक मोहजाल में फँसकर अपने इस मूल्यवान जीवन का नाश न करें। प्रत्येक दिन अधिक से अधिक समय ईश्वर के चिन्तन तथा पूजापाठ में व्यतीत करना चाहिए। यदि आप अपना सम्पूर्ण जीवन ही उसी के भजन-पूजन में लगा सकें तो आपको इस भव-सागर से तैर कर पार लगने में कोई कठिनाई नहीं होगी। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर अधिकार कर सकता है, जो व्यक्ति संसार की समस्त वस्तुओं से निर्लिप्त रहता है, जो व्यक्ति नित्यप्रति ईश्वर चिन्तन करता रहता है, उसी को अन्त में उस महिमामय दिव्य भगवान के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। अतः अपने जीवन को सफल बनाने के लिए ईश्वरोन्मुख होना आवश्यक है। आदि आदि········

स्वामीजी की मधुर वाणी सुनकर बूढ़े तथा भक्त लोग अतीव प्रसन्न हुए। कुछ युवकों में कानाफूसी होने लगी। अन्त में उनमें से एक नौजवान लड़के ने जोर से पुकार कर कहा—"स्वामीजी! यदि संसार के सभी लोग अपना काम-धन्धा छोड़कर ईश्वर भजन में ही लगेंगे तो उन्हें बैठे-बैठे अपनी जगह पर क्या आपका वह भगवान खिला देगा? और यदि सांसारिक वस्तुओं का उपभोग न ले तो क्या उसी ईश्वर के द्वारा निर्मित इन्द्रियों पर अन्याय नहीं होगा? और अन्त में उसने बड़ी धृष्टता के साथ पूछा कि हे स्वामीजी! उस महिमामय भगवान के दर्शन आपको भी कभी हुए हैं?" उस नौजवान लड़के की धृष्टता देखकर स्वामीजी कुछ कहने ही जा रहे थे कि लोगों ने उस लड़के की बहुत भर्त्सना की और उसे दण्डों से दण्डित कर वहाँ से निकाल दिया। इसी भाग-दौड़ में सभा के रंग का बेरंग हुआ और लोग बिखर गये। स्वामीजी भी अत्यन्त दुःखी मन से अपनी कुटिया में लौटे।

उपर्युक्त प्रसंग साधारण होते हुए भी गम्भीरता से सोचने पर अत्यन्त महत्वपूर्ण भी है। आज भी हमारे समाज में ऐसे कई व्यक्ति हैं कि जो उस नौजवान व्यक्ति की भाँति शंकालु हैं। शंकालु होना कोई बुरी चीज नहीं है। व्यक्ति शंकालु बनता है उसका प्रमुख कारण उसके मन की जिज्ञासा का असमाधान ही होता है। यदि उसका समाधान हो जायगा तो वह निश्चय ही निःशंक होगा। समय के साथ-साथ वातावरण तथा विचारों की दिशाओं में भी अन्तर होता जाता है। आज के इतिहास से ज्ञात होता है कि सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर आदि में भी ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिन्हें तथाकथित ईश्वरोपासक भक्तों तथा धर्म-घुटियों के वचन और कर्म में सामंजस्य नहीं दिखायी देता था। फलस्वरूप वे उन धर्मध्वजों को चुनौती देते हुए दृष्टिगत होते हैं।

आज का युग विज्ञान का युग है। इस युग में रहने वाले बुद्धिजीवी लोग किसी भी बात पर तब तक विश्वास रखने के लिए तैयार नहीं होते जब तक वह बात उनकी बुद्धि अथवा मन की कसौटी पर खरी न उतर आवे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह सत्य है कि विज्ञान की सहायता से मानव ने आश्चर्यकारक एवं अद्वितीय कार्य किये हैं कि जिसकी कल्पना तक उसके पूर्व सम्भव न थी। संसार के अनेक रहस्यों का उद्घाटन करने में मनुष्य सफल रहा है। जो बातें एक समय अत्यन्त अगम्य एवं अलौकिक प्रतीत होती थीं, वे आज सुगम एवं साधारण लगने लगी है। मनुष्य के शरीर का महत्वपूर्ण अंश—हृदय भी स्थानान्तरित अथवा परिवर्तित कराने में मनुष्य सफल रहा है। और बातों का तो कहना ही क्या? मनुष्य का भाग्य निर्धारित करने वाले चन्द्र, मंगल, गुरु आदि आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों पर भी मानव अपनी अद्‌भुत बुद्धि-शक्ति से केवल पहुँच ही नहीं रहा है अपितु उन पर अधिकार भी कर रहा है। ऐसी स्थिति में यदि मानव में आत्मबल उत्पन्न हो और परम्परागत अन्धश्रद्धा से प्रचलित बातों के प्रति उसके मन में अनास्था या प्रश्न चिन्ह हो तो उसमें आश्चर्य नहीं है।

मनुष्य ने सर्वप्रथम जब ईश्वर की कल्पना की होगी तब उसके सम्मुख निश्चय रूप से मानव को महामानव की ओर ले जाने की कल्पना रही होगी। वेदों में, उपनिषदों में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु तथा आकाश इन पंच महाभूतों की पूजा कही गयी है। इन्हीं तत्वों को—जो जीवन का सार है—उन्होंने ईश्वररूप प्रदान किया था। आगे चलकर मनुष्यों ने ही अपने स्वार्थ के लिए अनेक देवी-देवताओं का निर्माण किया। पुराणों में उनके चमत्कारों से युक्त असंख्य कथाओं का प्रचलन रहा। भारत का अधिकांश समाज अशिक्षित था। कुछ ही चुने हुए व्यक्तियों के हाथों में यह ज्ञान सीमित था। अतः स्वाभाविक रूप में इन गिने-चुने लोगों में से कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए ईश्वर का उपयोग करना शुरू किया। संसार की विविध व्याधियों से पीड़ित जनता अपने दुःख से मुक्ति चाहती थी और अन्धश्रद्धा से तथाकथित ईश्वर के पास पहुँचने के लिए पंडों तथा महन्तों की सहायता लेती थी। कई बार ईश्वर के कोप के काल्पनिक भय से कर्म-काण्ड का आडम्बर करने के लिए बाध्य हो जाती थी। परन्तु आज यह स्थिति नहीं रही है। देश में शिक्षा का प्रसार द्रुतगति से हो रहा है। मनुष्य बौद्धिक धरातल पर अपनी परम्परा को परखना चाहता है। युग के नये आलोक में यदि कोई व्यक्ति अपनी परम्परा को पुनः परखना चाहता हो तो उसे नास्तिक, श्रद्धाहीन, अनधिकारी आदि सम्बोधनों से पुकारकर आप सत्य को छिपा नहीं सकते। आपको उसकी बातें शान्तिपूर्वक सुननी चाहिए। यदि आप उसकी शंकाओं का समाधान करने में असमर्थ होंगे तो आपको इसे रोकने का भी कोई अधिकार नहीं है। आज का बुद्धिवादी मानव केवल नास्तिक ही नहीं है। वह उस अलौकिक दिव्य शक्ति के सम्मुख आज भी नतमस्तक है जो समस्त संसार का परिचालन करती है। इसी प्रकार वह पुराणों तथा परम्परा से पूजित देवी-देवताओं के प्रति उतना सश्रद्ध भी नहीं है। छः हाथ वाले और तीन मुख वाले श्री गुरुदेव दत्त, सिंह के मुख वाले नृसिंह, हाथी की सूंड वाले गजानन, बन्दर के रूप में हनुमान आदि के रूप की सत्यता वह स्वीकार ही नहीं करता। उसके विचार से ईश्वर के ऐसे रूप सम्भव ही नहीं हैं। ये सारी चीजें अप्राकृतिक एवं चमत्कारपूर्ण हैं जिन्हें मनुष्य ने अपनी कल्पना के सहारे उत्पन्न किया है। राम, कृष्ण आदि के सम्बन्ध में भी वह निश्चित रूप से मानता है कि वे मूलतः मानव ही थे। उन्हें अपने अलौकिक कार्यों से देवतातुल्य स्थान प्राप्त हुआ है।

वैसे हम लोग यह देख ही चुके हैं कि हमारे ही समाज के अनेक संतों एवं महापुरुषों को लोगों ने उनके लोकोत्तर कार्य से प्रभावित होकर ईश्वर के अवतार के रूप में स्वीकार किया है। उनके मन्दिर भी बनावाये गये हैं और उनकी ईश्वर समान पूजा भी होती है। आज का मनुष्य इस बात को स्वीकार नहीं करता कि देवता अनेक प्रकार के हो सकते हैं और उनके सिद्धांतों में विरोध हो सकता है। विभिन्न देवताओं तथा उनके सिद्धांतों का प्रणयन मनुष्यों ने अपने स्वार्थ के लिए ही किया है। इतिहास से भी यह ज्ञात होता है कि मध्य युग से लेकर आज तक ईश्वर के नाम पर गरीब, भोली-भाली, अनपढ़ जनता को भय दिखाकर अथवा अन्य मार्ग से लूटने का प्रयत्न धर्म के ठेकेदारों ने किया। ईश्वर के उस पवित्र नाम को बदनाम करने में इन्हीं आडंबर-युक्त कर्मकांडी व्यक्तियों का हाथ रहा है। आज का सजग व्यक्ति सोचता है कि जो इन पंडों तथा महंतों की कृपा का भाजन होकर मन्दिरों में बन्द ताले में चुपचाप पड़ा रहता है वह ईश्वर ही कैसा? वास्तव में ईश्वर विषयक उच्च एवं श्रेष्ठ भावना को नष्ट करने में मानव ही उत्तरदायी रहा है।

आज हम देखते हैं कि जीवन के विविध क्षेत्रों में नेत्रदीपक प्रगति करने पर भी कई क्षेत्र अभी तक ऐसे रहे हैं कि जिनका रहस्य मनुष्य नहीं जान सका है और उन्हें जान लेने की संभावना भी नहीं दिखायी देती। जीवन में कभी-कभी ऐसे प्रसंग आते हैं कि समस्त प्रयत्नों के बावजूद संपूर्ण अनुकूलता होते हुए भी प्रत्यक्ष फल-प्राप्ति के समय वांछित फल की प्राप्ति में सफलता नहीं मिलती। समस्त वैभवों के बीच रहकर भी मनः शांति का अभाव क्यों प्रतीत होता है? पास में जल होते हुए भी यह प्यास क्यों नहीं बुझती? इन प्रश्नों के उत्तर बुद्धि नहीं दे सकती। ऐसी अवस्था में बुद्धिवादी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति भी यह स्वीकार करता है कि संसार में अवश्य ही ऐसी शक्ति है कि जो मानव के परे है। उस अगम्य एवं अलौकिक शक्ति को वह 'दिव्य तत्त्व' मानकर अपना सिर झुकाता है। इसी दिव्य तत्त्व को परम्परा ईश्वर मानती आयी है। इस दिव्यतत्त्व का अस्तित्व उस प्राणतत्त्व वायु के समान है जिसकी अनुभूति सभी को होती है परन्तु इच्छा होने पर तथा लाख प्रयत्न करने पर भी उसके प्रत्यक्ष दर्शन सम्भव नहीं होते। यह 'दिव्यत्व' अनेक महापुरुषों में न्यूनाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। 'नर करनी करे तो नर का नारायण बन जाय' इस सिद्धान्त वाक्य का जन्म भी इसी भूमिका पर हुआ होगा।

मानव-समाज में संतुलन रखने के लिए जिस प्रकार स्वर्ग और नरक की कल्पना की गयी है उसी प्रकार अपने-अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार देवता-दानव के रूप भी वस्तुतः मनुष्य के ही विभिन्न रूप हैं। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सत् और असत् का अस्तित्व रहता है जब तक इन दोनों तत्वों का साधारण सन्तुलन किसी व्यक्ति में रहता है वह मानव की कोटि में रखा जाता है। जिन व्यक्ति विशेष में "असत्" का ही प्रभाव अधिक हो और परिणामस्वरूप वे ऐसे ही कार्य कर रहे हों कि जो असत् प्रवृत्ति का पोषण कर रहे हैं, वे 'दानव' की कोटि में रखे जाते हैं। इसी प्रकार जिन व्यक्ति विशेष में 'सत्' की मात्रा अधिक होती है और उनके सारे कार्य इसी प्रवृत्ति का पोषण कर उन्हें मनुष्य की साधारण धरातल पर से बहुत ऊपर उठा लेते हैं, उन्हें देवता की कोटि में रखा जाता है। इतिहास के पृष्ठ उलटने पर यह तथ्य सप्रमाण सिद्ध हो जाता है। ऐसे ही देवतातुल्य व्यक्ति अपने कार्यों से "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' इस सिद्धान्त का अनुगमन करते हैं और परिणामस्वरूप इनमें से ही कुछ व्यक्तियों में उस दिव्यत्व का साक्षात्कार हो जाता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के सम्मुख दो मार्ग हैं। एक मार्ग उसे भौतिक प्रलोभनों में आकर्षित कर स्वार्थ व निंद्य कर्म की ओर ले जाता है। इस मार्ग को वाममार्ग भी कहा जा सकता है। इस मार्ग का अनुसरण करने पर मनुष्य को तात्कालिक सुख-सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है। मनुष्य अप्रामाणिकता, असत्य, अन्याय, अनाचार, अत्याचार, अविवेक आदि दुर्गुणों के बल पर धीरे-धीरे नृशंसता की ओर बढ़ने लगता है। वह पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, योग्य-अयोग्य का विचार तक नहीं कर सकता। उस पर कभी सत्ता का तो कभी सम्पत्ति का, कभी अधिकार का तो कभी अहंकार का अन्धत्व सवार रहता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी विवेकक्षमता नष्ट-सी हो जाती है। ऐसे व्यक्ति अपनी शक्ति का अपने निजी स्वार्थ के लिए दुरुपयोग कर लेते हैं। यह मार्ग दानवता की ओर ले जाता है। इस मार्ग से जाने वाले व्यक्ति प्रारम्भ में उत्साही, आनन्दी एवं सुखी प्रतीत होते हैं परन्तु अन्त में अपने कुकर्मों के फलस्वरूप दुःखी ही रहते हैं। उन्हें वह चैन नसीब नहीं होता जो वे चाहते हैं।

दूसरा मार्ग दक्षिण मार्ग है, जो मनुष्य को देवता की ओर ले जाता है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों को प्रारम्भ में अनेक कठिनाइयों तथा परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। एक विशिष्ट स्तर पर जाने के पश्चात् ही इस मार्ग को अद्वितीय एवं अलौकिक रूप ध्यान में आ सकता है। इस मार्ग से जाने वाले व्यक्ति प्रामाणिकता, सत्य, न्याय, सदाचार, विवेक आदि सद्गुणों के बल पर जनता में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित करते हैं। प्रत्येक कार्य में वे सदसद्-विवेक बुद्धि का उपयोग कर अत्यन्त निर्भीकता के साथ उसके लिए फिर चाहे अपना बलिदान भी देना क्यों बन पड़े, स्थिर रहते हैं। 'सर्वे सुखिनः सन्तु' का दृष्टिकोण वे स्वीकार करते हैं। स्वार्थवश तात्कालिक प्रलोभनों से अपने जीवन को सुखी करने का विचार उनके मन में नहीं आता। दूसरों की भलाई के लिए चाहे जितना त्याग करने की उनमें क्षमता होती है। ऐसे व्यक्ति भौतिक दृष्टि से भले ही सम्पन्न न दिखाई देते हो परन्तु उनमें आन्तरिक सामर्थ्य, तेजस्विता एवं आत्मविश्वास की कमी नहीं रहती। इन्हीं के बल पर वे स्वयं झुकते हैं और दुनिया को भी झुकाते रहते हैं। यह सत्य है कि इस मार्ग पर चलने वाले बहुत ही थोड़े व्यक्ति उस दिव्य अमृतकलश तक पहुँच सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे मनुष्य की श्रेणी से उठकर देवत्व की श्रेणी में परिगणित होने लगते हैं। इस मार्ग को स्वीकार करने वाले शेष अनेक लोग अपनी-अपनी कार्यक्षमता के अनुकूल फल पाते रहते हैं। यही मार्ग मानव को ईश्वर अर्थात् महामानव अथवा पूर्णमानव की ओर ले जाता है।

यह मनुष्य पर निर्भर है कि वह दानव की ओर जाना चाहता है अथवा देवता की ओर ! कहा जाता है कि देवता अमर रहते हैं। इसी प्रकार देवता की श्रेणी में जाने वाले मनुष्य भी अपने दिव्य कार्यों से अमर हो जाते हैं। पीछे से आने वालों के लिए वे आदर्शरूप सिद्ध होते हैं। हमारे आदरणीय एवं श्रद्धेय युगपुरुषों ने अपने अनुभवों को अमरवाणी के रूप में सदैव इसी दक्षिण मार्ग का समर्थन किया है। यदि कोई बुद्धिवादी व्यक्ति हर प्राचीन परम्परा को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्धश्रद्धा का परिणाम मानकर त्याज्य मानने लगेगा तो वह उसकी भयंकर भूल होगी। किसी भी चीज को अच्छी या बुरी कहने के लिए प्रथम तो उसे देखने वाले व्यक्ति की विवेकक्षमता तथा उसके पश्चात् उस द्रष्टा की दृष्टि विशेष का भी विचार करना चाहिए। श्रीकृष्ण गोकुल से जब मथुरा में आये तब उन्हें देखने के लिए मथुरानिवासियों की भीड़-सी लगी। वृद्धों को वह दीनबन्धु लगा तो युवतियों को वह लक्ष्मीपति। बच्चों को वह गोपाल लगा तो कंस आदि को वही श्रीकृष्ण "काल" सदृश जान पड़ा। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के एक ही व्यक्तित्व को विभिन्न लोगों ने अपनी-अपनी दृष्टियों से देखा उसी प्रकार हमारी भारतीय संस्कृति के समर्थक महापुरुषों तथा सन्तों द्वारा प्रतिपादित वाणी को भी विभिन्न दृष्टियों से देखा जा सकता है।

यदि आप तटस्थ भावना से देखना चाहें तो स्पष्ट होगा कि किसी भी श्रेष्ठ महापुरुष ने आडम्बर, ढोंग-ढकोसला बाह्याचार, अन्धविश्वास, स्वार्थलोलुपता, पाप-पुण्य का क्रय-विक्रय, भगवान् के दाम्भिक भगत, आदि का समर्थन नहीं किया है। अपितु आज की बुद्धिवादी जनता के विचार ही प्रकारान्तर से उनके द्वारा प्रकट हुए हैं। यदि हम उन सन्तों के द्वारा प्रतिपादित तथ्यों को बुद्धिवादी दृष्टि से भी विचार करना चाहें तो दिखायी देता है कि उनकी दृष्टि में भी ईश्वर का रूप एक दिव्य तत्त्व ही था। ईश्वर मनुष्यों के हृदय में ही निवास करता है। मनुष्य को चाहिए कि वह इस तथ्य को पहचाने। जो मनुष्य अपने हृदय को पहचान सकता है। उसे ईश्वर की ओर जाने की सत्प्रेरणा स्वयं प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने "परहित सरिस धर्म नहिं भाई" तथा "सियाराम मय सब जग जानि" इन सिद्धान्तों के द्वारा बताया है कि लोककल्याण ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और सम्पूर्ण जगत में "सियाराम" अर्थात् उस दिव्य तत्व का समावेश रहता है। मनुष्य को चाहिए कि वह इस दिव्यतत्व का साक्षात्कार करे।

अधिकांश सन्तों एवं महापुरुषों ने मनुष्य के उत्थान की ओर संकेत दिया है। शक्ति का सदुपयोग तथा दुरुपयोग करना उसी के हाथ में है। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव ज्ञान की ज्योति के प्रकाश में अपने हृदय में स्थित सद्‌गुणों को देखकर उसके विकसन की ओर प्रयत्नशील रहे। ज्ञान की ज्योति के प्रकाश में अज्ञान का अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है। मनुष्य अन्तर्मुख होकर स्वयं को पहचान ले। सत्य, विवेक, न्याय, परोपकार, स्वार्थत्याग, आत्म-सन्तोष, दया, उदारता, आत्मविश्वास, सत्संग, विनयशीलता, ध्येयनिष्ठा, प्रेम आदि सद्‌गुणों का संबल लेकर यदि मनुष्य जीवन के पथ पर निर्भीकता के साथ निरन्तर चलता रहेगा तो निश्चय ही उसके जीवन का 'कंचन' होगा। अर्थात् वह अपनी अतुल कार्यक्षमता एवं असाधारण दिव्यशक्ति के द्वारा इस समाज में अमरता प्राप्त कर सकेगा। और अमरता का अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जिनमें 'दिव्यत्व' का साक्षात्कार हो। यही 'दिव्यत्व' साधारण मानव को देवता बना सकता है।

देवता मनुष्य की एक आदर्श कल्पना है। परन्तु यह कल्पना निराधार अथवा यथार्थ से परे नहीं है। प्रयत्न करने पर मनुष्य उस कल्पना को साकार भी बना सकता है। कबीरदास जी ने एक स्थान पर लिखा है—

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढे बन माँहि।
ऐसे घटि घटि पीव है, दुनिया देखे नाँहि॥

जिस प्रकार कस्तूरी का अधिकारी मृग उसकी दिव्य सुगन्धि से प्रभावित होकर अज्ञानवश उसी की खोज में सम्पूर्ण वन-प्रदेश में मारा-मारा घूमता है उसी प्रकार हम मनुष्यों की स्थिति है, जो अपने ही भीतर निवास करने वाले ईश्वर अर्थात् दिव्यत्व को अज्ञानवश न जानने से उसकी प्राप्ति के लिए सारे संसार भर में भटकता रहता है। अतः मानव को चाहिए कि वह अपने भीतर छिपे हुए उस दिव्य तत्व को पहचान ले और "साधना" द्वारा अपनी निष्ठा एवं सद्‌गुणों के बल पर ऐसा अमर एवं लोकोत्तर कार्य करे जिससे वह स्वयं जनता में देवता का स्थान प्राप्त कर सके। इस प्रकार 'नर' करनी करे तो नर का 'नारायण' सहज रूप में बन सकता है।

✡✡

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org